कविता की वैचारिकी और समकालीन रचना कर्म

डॉ0 विधि शर्मा,

अदिति महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय

समय और जीवन के बदलाव के साथ कविता की संवेदना तथा उसके अभिव्यक्ति के तरीके में भी परिवर्तन आता है। ब्रेख्त की पंक्ति है–'यथार्थ बदलता है तो उसे अभिव्यक्त करने के तरीके भी बदलते हैं।' इस तरह कविता का कोई भी प्रतिमान शाश्वत और सार्वभौमिक नहीं होता। युग और परिवेश के बदलाव के साथ अभिव्यक्ति के नए माध्यमों की तलाश आवश्यक हो जाती है जिससे उनकी व्याख्या परंपरागत तरीके से नहीं की जा सकती।

यहाँ समकालीन कविता से अर्थ 1975 से 80 के बाद की कविता से है। अरुण कमल ने लिखा : "समकालीन कविता से यहाँ आशय कवियों की उस पीढ़ी की कविता से है जिसने अपनी आँख से निराला को नहीं देखा, जिसने निराला को केवल पढ़कर देखा। मोटा–मोटी यह वह पीढ़ी है जो सन् सत्तर के बाद हिंदी कविता में आई और जिसकी स्वतंत्र पहचान सन् अस्सी के आस–पास या उसके बाद स्थिर हुई ।"[1]

1975 का समय स्वाधीन भारत का वह 'टर्निंग फेज' है, जहाँ से भारतीय समाज के वैचारिक और राजनीतिक स्वरूप का बुनियादी ढांचा बदलता है। इससे केवल विचार ही नहीं समाज का जीवन भी बनता है। आपातकाल इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। जे0पी0 आंदोलन और आपातकाल : भारतीय लोकतंत्र की परीक्षा में बिपिन चंद्र ने लिखा : "1975 में भारत ने अपनी आजादी के बाद सबसे बड़े राजनीतिक संकट का अनुभव उस समय किया, जब 26 जून को आंतरिक आपातकाल की घोषणा कर दी गई।"[2] इस आपातकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की छानबीन करते हुए उन्होंने लिखा : "1973 की शुरुआत से ही इंदिरा गांधी की लोकप्रियता घटने लगी। जनता की आकांक्षाएँ अधूरी थीं। ग्रामीण या शहरी गरीबी एवं आर्थिक विषमताओं के मोर्चे पर शायद ही कुछ किया गया था और ग्रामीण क्षेत्रों में जातीय शोषणों में कोई कमी नहीं आई थी। असंतोष उभरने का तात्कालिक कारण आर्थिक परिस्थितियों में स्पष्ट गिरावट था। मंदी, बढ़ती बेरोजगारी, आकाश छूती महँगाई और खाद्य पदार्थों की कमी आदि सब–कुछ ने मिल–जुल कर एक गंभीर संकट उपस्थित कर दिया था।

आर्थिक मंदी बेरोजगारी महँगाई और ज़रूरी सामानों की कमी की वजह से बड़े पैमाने पर औद्योगिक अशांति उत्पन्न हो गई। 1972–73 में देश के विभिन्न भागों में हड़तालों की लहर–सी आ गई जिसकी चरम परिणति मई 1974 की अखिल भारतीय रेलवे हड़ताल के रूप में हुई। रेलवे की हड़ताल बाईस दिनों तक चलती रही परंतु आखिर में तोड़ दी गई मजदूरों के बीच श्रीमती गांधी की लोकप्रियता और भी कम हो गई।

कानून और व्यवस्था की हालत लगातार, खासकर 1974–75 के दौरान, और भी खराब हो गई। हड़तालें, छात्र–प्रदर्शन और जुलूस अक्सर हिंसक हो उठते। कई कॉलेज और विश्वविद्यालय लंबे समय के लिए बंद कर दिए गए।[3]

कुल मिलाकर कांग्रेस के खिलाफ देश में एक जबरदस्त लहर उठी, जिसमें मजदूर, किसान, छात्र, अन्य राजनीतिक दल, मध्यवर्ग यहाँ तक

कि पूँजीपति वर्ग भी शामिल हुआ। यह स्थिति आजादी के बाद देश में पहली बार उत्पन्न हुई जहाँ कांग्रेस और उसकी नीतियों से हटकर देश ने अलग सोचना शुरू किया। जयप्रकाश नारायण ने इसमें बड़ी भूमिका अदा की और देश में ग़ैर–कांग्रेसवाद के रूप में एक वैचारिक राजनीतिक विकल्प खड़ा किया। जे0पी0 ने उस समय अपने राजनीतिक संन्यास को त्याग कर पहले बिहार में फिर पूरे देश के स्तर पर आंदोलन छेड़ा। उन्होंने 'संपूर्ण क्रांति' का नारा दिया जो उस पूरी व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष था जिसने हर व्यक्ति को भ्रष्ट बनने के लिए मजबूर कर दिया था। इसकी परिणति आपातकाल और उसके बाद 1977 के चुनाव में कांग्रेस की हार के रूप में हुई। तब देश ने कांग्रेस के विकल्प के रूप में जनता पार्टी की सरकार को देखा।

इस दुहरे राजनीतिक चक्र का प्रभाव भारतीय जन–मानस पर दिखाई दिया, जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य में भी देखी जा सकती है। खासतौर से कविता में धूमिल, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर और नागार्जुन की ढेर सारी कविताएँ उस घटना की गवाह हैं। यही वह समय है जब कवि ने अपने मानस पटल के विचार को जीवन में बदलना शुरू किया क्योंकि तब तक 'नई कविता' काव्यांदोलन बिखर चुका था। उसकी अभिजात गरिमा टूटने लगी थी और कविता में एक प्रकार के मोहभंग का स्वर प्रमुख हो गया। स्वतंत्र भारत से जनता की जो आकांक्षाएँ थीं वह धूमिल पड़ गईं। भविष्य के सभी स्वप्न बिखर गए थे।

पराधीन भारत में यातना का लंबा सफर भोगने के बाद वही शोषण और दमन स्वाधीन भारत में जनता के सामने नहीं शक्ल में खड़ा हो गया। कुल मिलाकर स्थिति अपेक्षा के विपरीत थी जिसने जनता में एक प्रकार की निराशा की भावना भर दी। उसका विश्वास व्यवस्था मात्र से यहाँ तक कि संघर्षों और मूल्यों पर से भी उठ गया।

आजाद भारत में पहली बार यह महसूस किया कि विचार को जीवन में डालकर जिंदगी की लड़ाई लड़ी जा सकती है। तब अनावश्यक नहीं है कि उस दौर के साहित्य और कविता का बहुलांश राजनीतिक मूड से भरा हुआ है जहां विचार कोई नारा नहीं, जिंदगी का हिस्सा है। अरुण कमल ने लिखा : "आज हम कविता को जन संघर्ष का एक हथियार बनाना चाहते हैं, हम चाहते हैं कि वह सिर्फ थोड़े से लोगों के लिए नहीं, बल्कि सबके लिए लिखी जाए। हमारे नए कवि इसी प्रयत्न में लगे हुए हैं और इसी दिशा में आगे बढ़ने की कोशिश कर रहे हैं।"[4]

इस तरह से समकालीन कविता ने सबसे पहले जिस विचार को जीवन से जोड़ा वह विचार था गरीब, मजदूर, किसान, असहाय यानी गाँधी जी के शब्दों में–'समाज के अंतिम आदमी' के सुख–दुख से जुड़ना। अब समाज के इस अंतिम पायदान पर खड़े आदमी के प्रति किसी सहानुभूति नहीं बल्कि उसके जीवन को साझा करने की बात है। कविता के उद्देश्य को लेकर अरुण कमल ने लिखा : "हिंदी की कविता यानी श्रेष्ठ कविता आज पहले की तुलना में अधिक विविध है। अधिक समृद्ध है, ऐसा कहना तो मुश्किल है। पर जीवन के जितने सारे क्षेत्र, अनुभव और भंगीमाएँ अभी आ रही हैं उतनी पहले नहीं थीं। सीखने से लेकर स्वगत तक–पूरा विस्तार मिलता है। कुल मिलाकर आज कविता निर्बलतम का पक्ष है। जिसका कोई नहीं, उसकी कविता है। जो सबसे कमजोर, दलित और असहाय है, उसका बल है। मुए बैल की खाल से बनी भाँथी की धोंकती साँस है जिससे लोह भी भस्म हो जाए। इसके सिवा कविता की दूसरी भूमिका नहीं है और ना ही हो सकती है। ऐसे समय में जब देश में पूँजी का कोई वास्तविक विपक्ष बचे ही नहीं, कविता जीवन का अंतिम मोर्चा, अंतिम चौकी है।"[5]

इस तरह कविता स्वभावतः एक नैतिक प्रतिरोध है। समकालीन कविता ने कविता के इस

उद्देश्य को लेकर जीवन से जुड़कर जो कविता लिखी उसमें केवल सामाजिक–राजनीतिक या बाह्य अंतर्विरोधों तक उसकी दृष्टि केंद्रित नहीं है बल्कि मनुष्य के भीतर उसके मन में जो चल रहा है, जो उत्थान–पतन हो रहा है उसे भी पकड़ने की कोशिश कविता कर रही है।

यहाँ समकालीन का अर्थ है पूँजी, बाजार, स्वार्थ और अमानवीकरण के विरुद्ध जागृत होना। 1975 से लेकर 1990 तक की राजनीतिक आर्थिक और सामाजिक हलचल ने साफ कर दिया कि भारतीय समाज की ज़रूरत परंपरागत विकास व्यवस्था से हटकर ने विकास और व्यवस्था की है। इसी वजह से राजनीतिक नेतृत्व का बदलाव इस बीच जल्दी–जल्दी होता रहा। राम मनोहर लोहिया ने लिखा : "जिंदा कौमें पाँच वर्ष इंतजार नहीं करतीं।" इसका परिणाम यह हुआ कि 1990–91 का काल आर्थिक उदारीकरण का दौर बना। उस समय की भारतीय विदेश नीति पर बात करते हुए बिपिन चंद्र ने नब्बे के दशक में विदेशी नीति नई चुनौतियाँ : आज और कल में लिखा : "हाल के वर्षों में कई घटनाओं के कारण भारतीय विदेश नीति के सामने गंभीर चुनौतियाँ खड़ी हुई हैं : सोवियत संघ का विघटन हुआ तथा शीत युद्ध की समाप्ति और आर्थिक रणनीति में भूमंडलीकरण तथा उदारीकरण की ओर झुकाव हुआ। ये दोनों घटनाएँ भारत के संदर्भ में 1991 में घटीं। इनके नतीजे अलग–अलग निकले। भारत को अमेरिका तथा पश्चिमी विश्व के साथ अपने संबंधों का पुनर्गठन करना पड़ा। उसे पूँजी, टेक्नोलॉजी और निर्यात के लिए बाजार की जरूरत थी। और वैसे भी अब मदद के लिए सोवियत संघ अस्तित्व में नहीं था। उसकी सफलता इस बात पर निर्भर थी कि वह तेज आर्थिक विकास के लिए नई राजनीति का कितनी तेजी और बेहतर तरीके से प्रयोग करता है।"[6]

इस आर्थिक मोर्चे को लेकर भारत के पुराने राजनीति निर्माताओं एवं समर्थकों में से कइयों ने बदली स्थिति में सुधारों की ज़रूरत महसूस की। उदाहरण के लिए इंदिरा गाँधी और नेहरू युग के अर्थशास्त्री के0एन0राज मार्क्सवादी अर्थशास्त्री लॉर्ड मेघनाद देसाई, नेहरूवादी नरसिंह राव, वामपंथी अर्थशास्त्री सुखमय चक्रवर्ती, सी0एच0हनुमंत राव, अर्जुन सेनगुप्त, नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन, ज्योति बसु, खुद आज के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने उस समय भारत को उदारीकरण, आर्थिक सुधारों एवं भूमंडलीकरण में भाग लेने की हिमायत की। यह बात और है कि इन लोगों के रुख एवं कारण तथा हिस्सेदारी की सीमाएँ अलग–अलग थीं।

उसके बाद मंडल–आयोग और आरक्षण का सिद्धांत, क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियों का उभार, बाबरी–मस्जिद अयोध्याकांड, न्यूक्लियर शक्ति प्रदर्शन, कारगिल युद्ध, गुजरात नरसंहार आदि ऐसी राजनीतिक और सामाजिक घटनाएँ हैं जिनमें समूचा देश सहभागी बनता है। इन घटनाओं का असर आज सबके दिलो–दिमाग पर है। इस 25–30 वर्षों के राजनीति घटनाचक्र का असर जो भारतीय सामाजिक संरचना और जीवन पर पड़ा, उसका साफ– साफ असर साहित्य और चिंतन में देखा जा सकता है जहाँ कविता ने अपने तरीके से इस जीवन को अधिक पकड़ा है उसके साथ जीया है। यही कारण है कि 'प्रगतिवाद' के बाद कविता में जो राजनीति और विचार की गर्माहट 'प्रयोगवाद', 'नई कविता' तथा 'अकविता' में कम हो गई थी उसे फिर नए सिरे से समकालीन कविता ने रचा। वही विचार और राजनीति को कविता में ढालने की प्रक्रिया में समकालीन कविता एक अर्थ में प्रगतिवाद से भिन्न भी है–वह है समकालीन कविता का जीवन से अधिक जुड़ाव जिसमें नए कवियों के साथ पुराने प्रगतिशील कवि नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन आदि के साथ–साथ सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, शमशेर आदि सभी ने अपनी–अपनी तरह से समकालीन कविता की धार को तेज किया। इस प्रकार समकालीन कविता के

आरंभ में ही जनवादी धारा हिंदी कविता की मुख्यधारा बन गई जिसमें कुमारेंद्र, ज्ञानेंद्रपति, धूमिल, कुमार विकल, श्रीराम तिवारी, अरुण कमल, उदय प्रकाश, आलोक धन्वा, रमेश रंजक आदि कवि बड़ी संख्या में इस जनवादी समकालीन कविता से जुड़े और बहुत अच्छी कविताँ इस आंदोलन को दी हैं। बड़ी संख्या में कवियों के जुड़ने के कारण समकालीन कविता का यह दौर वैविध्यपूर्ण और परस्पर भिन्न छवियों तथा स्वरों से भरपूर है। इसके बावजूद समकालीन कविता ने अपनी कविताओं की पहचान स्पष्ट बनाई है जिसके आधार पर उसके प्रति मानव पर भी बात की जा सकती है।

समकालीन कविता के ठीक पहले की कविता कुछ ज्यादा दिमागी रक्तालाप और तथाकथित रूप से विचार–प्रधान थी। अरुण कमल ने लिखा : "सन् अस्सी के आसपास कविता ने एक नया रास्ता पकड़ा। जैसा कि निराला ने कहा भी है कि कविता में सबसे अधिक आवश्यक है 'भाव प्रवणता'। समकालीन कविता में एक बार फिर भाव प्रधान हुआ। जो पूरे जीवन का सुख–दुख संघर्ष था, जो अनुभूति संवेदना थी और राग–विराग था उस पर बल बढ़ा। मुक्तिबोध का शब्द लेकर कहें तो कविता में 'मानवीय गहराई' बढ़ी। संभवतः इसी कारण नामवर जी ने इसे 'प्रगीतात्मकता कहा।" [7]

इस कविता ने अपनी कार्य–शैली भी बदली। ठीक पहले की कविता वक्तव्यों, विचार, उच्छ्वासों और प्रतिज्ञाओं से भरी हुई थी। पर अब कविता का स्वर वक्तव्य न होकर, अधिक संयत और जीवन से जुड़ा हुआ है जिसका प्रभाव नारों के बजाय ज्यादा तीक्ष्ण है। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित इस दौर की कविताओं में स्वतंत्रता की अदम्य लालसा, संयमित वस्तुपरक विरोधभावना और स्थितियों की गंभीरता के एहसास की चेतना के साथ–साथ शिल्प के भी नए प्रयोग मौजूद हैं। कवि शमशेर ने लिखा : "कवि का कर्म अपनी भावनाओं में, अपनी प्रेरणाओं में अपने आंतरिक संस्कारों में समाज–सत्य को ढालना, उसमें अपने को पाना है और उस पाने को अपनी पूरी कलात्मक क्षमता से, पूरी सच्चाई के साथ व्यक्त करना है, जहाँ तक वह कर सकता हो।"[8] इस दृष्टि से समकालीन कविता और उसके कवि अपने कवि–कर्म का पूरी ईमानदारी से निर्वाह कर रहे हैं। इस दौर की कविता अपनी अंतर्वस्तु में जीवन के समूचे अनुभव के साथ शिल्प में भी अलग है। निराला ने अपने अनेक लेखों में इस बात पर बल दिया कि कविता एक अखंड इकाई है, इसमें एक या दो पंक्ति या स्थल का अलग से महत्व नहीं बल्कि प्रत्येक शब्द अपने पूरे वातावरण में ही अर्थवान होता है।

कविता की अखंड इकाई को लेकर अरुण कमल ने लिखा : "समकालीन कविता ने एक बार फिर कविता के समग्र, संश्लिष्ट विन्यास का आग्रह सामने रखा। अकविता के दौरान और उसके बाद धूमिल तक ने तथा धूमिल के ठीक बाद भी प्रायः ऐसा देखा जाता है कि कविता की एक या दो पंक्ति, पद या बिंब सारा ध्यान लूट ले जाते हैं। बाद की कविता ने एक बार फिर निराला जैसी अन्विति और अखंडता हासिल करने का यत्न किया है इसी का नतीजा है कि इन कवियों ने अधिकांश छोटी कविताएँ लिखीं यानी लंबी नहीं। इनके पहले लंबी कविता का रिवाज़ था, लेकिन इन्होंने बहुधा छोटी अथवा कम शब्दों की कविताएँ लिखीं क्योंकि वहाँ शब्दों का पारस्परिक निर्वाह ज्यादा सुगम है। सघनता समकालीन कविताओं का अभीष्ट है।"[9]

इन कविताओं में जनवादी गीतों के नए लोकधुनि प्रयोग भी मिलते हैं जिसने कविता की भाषा को परंपरागत ढाँचे से निकालकर एक नया अर्थ भरने का प्रयास किया है। रघुवीर सहाय के यहाँ सार्थक भाषा की खोज व्यंग्य के मुहावरे में सामने आती है :

हँसों पर चुटकुलों से बचो

उनमें शब्द हैं

कहीं उनमें अर्थ ना हो जो किसी ने सौ साल पहले दिए हों।

–हँसो–हँसो जल्दी हँसो/रघुवीर सहाय

समकालीन कविता की भाषा पर बात करते हुए हमें अपनी सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों को यानी इस समय और समाज के जीवन को ध्यान में रखना होगा क्योंकि इस आंदोलन की कविता जीवन संदर्भों के चित्रण की कविता है। यह कविता जीवन के सामान्य कारोबार से उठकर आई है, इसलिए स्वभावतः जीवन के सामान्य कारोबार की भाषा कविता की भाषा के रूप में विकसित हुई है। यह भी कहा जा सकता है कि इस दौर के कवियों ने अपने जीवन के अनुभवों को व्यक्त करने के लिए जीवन की भाषा का इस्तेमाल किया है। अरुण कमल के शब्दों में : "एक बार फिर कविता ने मनुष्य के पूरे जीवन से दैनंदिन के कार्य व्यापार और परिवेश से, अपनी गहरी आसक्ति व्यक्त की।"[10] कुल मिलाकर वास्तव में यह कविता की अपनी जड़ों की ओर वापसी है। इसमें कवियों का काव्य–संसार बार–बार जंगल, चिड़िया, भूख, नींद, कारीगर, रोटी, चूल्हा, आग आदि संदर्भों को नए सिरे से उभारता है। 'आग' का वर्णन बार–बार आता है चाहे वह अरुण कमल की कविता हो या केदारनाथ सिंह अथवा उदय प्रकाश की। यह 'आग' यहाँ क्रांति का प्रतीक है :

आप विश्वास करें

मैं कविता नहीं कर रहा

सिर्फ आग की ओर इशारा कर रहा हूँ

वह पक रही है

और आप देखेंगे–यह भूख के बारे में

आग का बयान है

जो दीवारों पर लिखा जा रहा है।

–ज़मीन पक रही है/केदारनाथ सिंह

केदारनाथ सिंह इस कविता में निहायत सादे ढंग से 'आग' की ओर इशारा करते हुए उसे विद्रोह का हथियार मानते हैं। सर्वेश्वर की कविताओं में भी अदम्य जिजीविषा के साथ धधकती आग मौजूद है :

उसने कहा–लिखा–आग

दिन–भर के थके माँदे चंद अनपढ़ खेतिहर मजदूरों ने

सिर झुका, पहली बार

अटक–अटक कर

स्लेट पर खड़िया से लिखा–'आग'।[11]

–जंगल का दर्द/सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

समकालीन कविताओं में एक बात जो ध्यान आकर्षित करती है वह यह कि इस दौर में माँ, बाप, बच्चे, पत्नी और प्रेयसी पर पुनः कविताएँ लिखी जाने लगीं। इसका मतलब यह है कि जीवन में जो कुछ सहज, सुंदर, मानवीय एवं प्राकृतिक है उसकी जगह कविता में बनी है। विकास के नए मॉडल, आपाधापी की जिंदगी, आर्थिक विषमता और अमानवीय परिस्थितियों में भी यह मानवीय संबंधों से जुड़ाव है। अतः ये कविताएँ एक बार फिर अपनी मूल ताकतों की पहचान में रत दिखाई देती हैं।

समकालीन कविता में मानवीय चिंता का आयाम बढ़ा है। यह बात पहले प्रगतिशील काव्यधारा में भी दिखाई देती है कि वैचारिक स्तर पर दुनिया में लोकतंत्र और मानवीयता के पक्ष में जहाँ का साहित्य खड़ा है वह उससे अपना साझा करता है। वह जानना चाहता है कि वहाँ की जनता का दुख–सुख क्या है। बर्तोल्ड ब्रेख्त, लोरका, पाब्लो नेरूदा, नाज़िम हिकमत आदि की कविताओं ने आज के हिंदी, कवि और कविता को

छुआ है। कई बार इसको लेकर यह आरोप भी लगा है कि समकालीन कविता की भाषा अनुवाद की भाषा है। लेकिन दुनिया के महान कवियों की कविताओं से समकालीन कविता का जुड़ना अनुवाद नहीं बल्कि जीवन का विस्तार है जो हमें एक–दूसरे के करीब लाता है। जीवन–दृष्टि के इस विस्तार के बावजूद यहाँ कविता को किसी 'क्लासिकी फ्रेम' में बढ़ने की कोशिश नहीं है जिन्हें किसी खास फ्रेमवर्क में पढ़ा जाए। अरुण कमल ने लिखा : "कविताओं कोप्रतीक याबीजगणितीय सूत्रों के तौर पर भूलकर भी ना पढ़ा जाए, नहीं तो अर्थ का बहुत बड़ा नुकसान होता है। कुछ लोग कविता को बिना प्रतीक माने पढ़ ही नहीं सकते। इससे वस्तु की गरिमा तहस–नहस होती है। हर वस्तु खुद इतनी अर्थवान और समृद्ध होती है कि उसे दूसरे किसी प्रयोजन का माध्यम बनाना हमेशा जरूरी नहीं है।"[12]

इसी प्रकार कई बार समकालीन कविता के लोक–जीवन और आंचलिक शब्दों से ज्यादा जुड़ने की बात उठती है। वह भी कहा जा रहा है कि वहाँ ज्यादातर स्थानीय कविताओं की रचना हो रही है। अरुण कमल ने इस पर विस्तार से लिखा और यह भी बताया कि किस तरह से समकालीन कविता स्थानीयता को आधार बनाकर छोटे जीवन को अपना विषय बनाती है जहाँ लघुमानवों की बेचारगी के बजाय मनुष्य अपनी पूरी गरिमा के साथ जीवन जी रहा है। 'बीज जितनी पुरानी, फल उतनी नई' लेख में विजयदान देथा की कहानियों पर लिखते हुए अरुण कमल ने कहा : "इन कहानियों में वही गहन ऐंद्रिकता है, जो कविताओं की और लोककथाओं, लोकगीतों की आधारभूमि है। कविता तो अंदाजेबयां में ही है। लोक जीवन और लोक–साहित्य में जो स्वाभाविक कविता होती है उसका लाभ अनायास ही लेखक को मिलता है।"[13]

इस तरह से देखा जा सकता है कि समकालीन कविता सैद्धांतिक रूढ़ियों से बाहर निकली और उसमें एक आत्मीय स्पर्श और नई उर्वरता आई। साधारण आदमी के निकट पहुँचने के क्रम में ही इन कवियों ने बोलियों के शब्दों को भी कविता में शामिल करने की कोशिश की। लेकिन इस उद्देश्य में बहुत कम कवि सफल हो सके क्योंकि इनमें से अधिकांश कवियों की दुनिया शहरी मध्यवर्ग की दुनिया है और वे अपने इन मध्यवर्गीय संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाए। ऐसे में अरुण कमल जैसे कवि का कविता के मंच पर उदय जनवादी कविता को एक नई धार देता है। वे जनवादी कवियों की नई पीढ़ी के कवि माने जाते हैं किंतु उन्होंने शीघ्र ही इन कवियों के बीच अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। वैसे तो उनकी बहुत–सी कविताएँ आठवें दशक के मध्य से ही विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं किंतु दशक के अंत तक आते–आते 1980 में उनका प्रथम काव्य संग्रह अपनी केवल *धार* प्रकाशित हुआ। अपने इस पहले ही काव्य संकलन में इतनी अच्छी कविताएँ देकर उन्होंने स्वयं को इस पीढ़ी के एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर के रूप में स्थापित कर लिया। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती दौर की सीमाओं को दृष्टि में रखते हुए बहुत सचेत ढंग से अपनी रचना–दृष्टि का विकास किया। उन्होंने मध्यवर्गीय सीमाओं से निकलकर जन–जीवन से निकट संपर्क स्थापित करते हुए जनता की बोली, लोक–कला और जातीय संस्कृति के तत्वों को आत्मसात किया और साथ ही भाषा और कला के औजारों पर अपनी पकड़ लगातार मजबूत की।

इस दौर के कवियों ने छोटे–छोटे विषयों और आशयों को कविता में रूपांतरित करने की चेष्टा की है। बड़ी समस्याओं और विषयों का स्थान घर–परिवार, गृहस्थी, लोक–जीवन आदि के चित्रण नें ले लिया है। जीवन के विराट चित्रों का यहाँ प्रायः अभाव दिखाई देता है। यहाँ कवियों का आग्रह है छोटी कविताओं की ओर

अधिक रहा है। यह सही भी है कि किसी भी कविता की श्रेष्ठता मात्र उसकी लंबाई के आधार पर नहीं आँकी जा सकती। कई बार बहुत छोटी कविता अपने अर्थगांभीर्य द्वारा पाठक पर अपनी छाप गहरी छाप छोड़ जाती है। कम शब्दों में अधिक को अभिव्यक्त कर पाना श्रेष्ठ कविता का गुण है। कवि शमशेर के शब्दों में : "अभिव्यक्ति में यथासंभव कम–से–कम और नितांत आवश्यक शब्द ही होने चाहिए।" इस पीढ़ी के अधिकांश कवि इस तर्क का निर्वाह करते हुए दिखाई देते हैं। राजेश जोशी, उदय प्रकाश, कुमार अंबुज, अरुण कमल, आलोक धन्वा, केदारनाथ सिंह, विनोदकुमार शुक्ल आदि इस दौर के प्रमुख कवि हैं। ये सभी कवि कविता में अपना सक्रिय योगदान दे रहे हैं। आलोक धन्वा का काव्य–संग्रह दुनिया रोज बनती है, उदय प्रकाश का रात में हारमोनियम, कुमार अंबुज का अनंतिम, अरुण कमल का सबूत, नए इलाके में, पुतली में संसार आदि उनकी सृजनशीलता के प्रमाण हैं। इन कविताओं के माध्यम से समकालीन कविता अपने अनुभव में गहरे डूबकर जीवन को खोज निकालती है।

संदर्भ

1. कविता और समय/अरुण कमल, पृष्ठ–19
2. आजादी के बाद का भारत/विपन चंद्र, पृष्ठ–329
3. आजादी के बाद का भारत/विपन चंद्र, पृष्ठ–329
4. कविता और समय/अरुण कमल, पृष्ठ–19
5. कविता और समय/अरुण कमल, पृष्ठ–232
6. आजादी के बाद का भारत/विपन चंद्र, पृष्ठ–387
7. कविता और समय/अरुण कमल, पृष्ठ–21
8. कुछ और कविताएँ–'भूमिका'/शमशेर
9. कविता और समय/अरुण कमल, पृष्ठ–20
10. कविता और समय/अरुण कमल, पृष्ठ–22
11. कविता और समय/अरुण कमल, पृष्ठ–99
12. कविता और समय/अरुण कमल, पृष्ठ–158
13. कविता और समय/अरुण कमल, पृष्ठ–158